नारी लेखन के परिप्रेक्ष्य में मानवाधिकारों की भूमिका

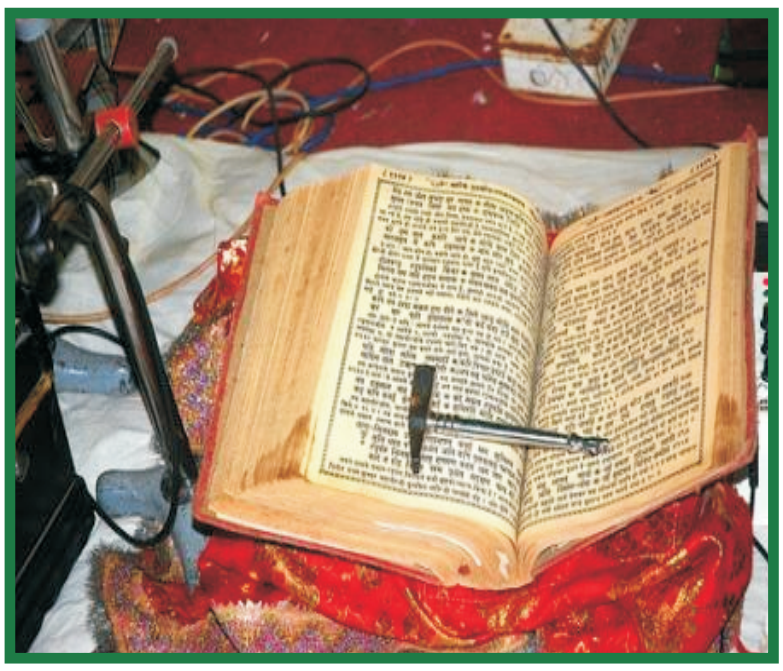

सारांश :-

यद्यपि ज्ञान, वैभव एवं शक्ति की अधिष्ठती देवियाँ, क्रमशः सरस्वती, लक्ष्मी एवं दुर्गा स्त्री के रूप में कल्पित हुई थी, और इनका धार्मिक अनुष्ठानों में आज भी महत्व बना हुआ है, किन्तु सामाजिक सन्दर्भों में उसकी स्थिति बिल्कुल ही विपरीत हो गई है। स्त्री को केवल मोह रूपी माया जाल माना गया है जो कि पुरुष को उसके सद्मार्ग से च्युत करने वाली मानी गई है। सिद्धार्थ जैसे विवेकशील युवक भी अपनी पत्नी यशोधारा को रात्रि में सोता हुआ छोड़कर चुपचाप जंगल जाता है।

कुँजीषब्द –

मानवाधिकार, नारी लेखन, स्त्री सशक्तिकरण .

राखी उपाध्याय[1] , मन्जू[2]

[1]एसोसिएट प्रोफेसर , हिन्दी विभाग, डी.ए.वी. (पी.जी.) कॉलेज, देहरादून.
[2]शोध छात्रा , हिन्दी विभाग, , डी.ए.वी. (पी.जी.) कॉलेज, देहरादून.

प्रस्तावना :-

कालान्तर में भी स्त्रियों के जो स्वाभाविक एवं सात्विक गुण–मान–मर्यादा, प्रेम, करुणा, लज्जा एवं संकोच जैसे गुण उसकी दुर्बलता के रूप में चिन्हित हुए। उसके ऊपर जो अबौद्धिकता तथा परतन्त्रता का आवरण पड़ा हुआ था, वह सैंकडों वर्ष के अन्तराल में एकाएक क्षीण होने लगा, अब उसे अपनी बौद्धिक क्षमता तथा आत्म–पहचान का बोध होने लगा उसी के साथ ही स्त्री के स्वतन्त्र अस्तित्व एवं सामान व्यक्तित्व की चिंगारियाँ जोर पड़कने लगी। सामाजिक तथा पारिवारिक ऊहापोह से क्षुब्ध होकर अब वह खुली हवा में अपने भावों एवं विचारों को वाणी देने लगी। वह समझने लगी कि मानव–अधिकार सभी के लिए है चाहे वह पुरुष हो या फिर स्त्री। वे प्रत्येक व्यक्ति के लिए मूल–भूत तथा जन्मजात हैं। पंत की यथार्थ परक वाणी ने भी उसे पुरुष की कामान्धता से बाहर निकालकर उसे मुक्त करने की घोषणा करते हुये ललकारा है–

"योनि नहीं है रे नारी, वह भी मानवी प्रतिष्ठित।
उसे पूर्ण स्वाधीन करो, वह रहे न नर पर आश्रित।"[1]

सदी के अन्तिम दशकों में विचारों की आँधी ने शिक्षित नारी के तन मन को झकझोरा तथा उसे अपने मूल अधिकारों के प्रति सचेत किया। स्वावलम्बी बनने के लिए कूपमण्डूकता से निकलकर नारी ने चौखट से बाहर कदम रखे, इस प्रकार नारी के जीवन में मूल अधिकारों के प्रति क्रान्ति का श्री गणेश हुआ। नारी के बिना तो सृष्टि की कल्पना भी नहीं की जा सकती। हर युग में चाहे सतयुग हो द्वापर हो या त्रेता या कलयुग, नारी ने सदैव अपनी योग्यता तथा अपनी भावना एवं बौद्धिक क्षमता के कारण एक मुकाम तथा उच्च स्थान प्राप्त किया है। विभिन्न परिस्थितियों एवं अनेक तरह के दवाबों के बावजूद उसने अपने अन्तर्तम में निहित दैवीय कलात्मक गुणों को समय के अनुसार बाह्य जीवन में प्रकट किया है तथा मानव अस्तित्व की चेतना से स्वयं को जोड़े रखा है और वह अपने मौलिक अधिकारों के प्रति सचेत है।

मानवाधिकारों से तात्पर्य ऐसे अधिकारों से है जो प्रत्येक व्यक्तियों को मानव तथा प्राणी होने के नाते स्वयं ही प्राप्त होते हैं। फिर चाहे वह किसी भी वर्ग, किसी भी जाति तथा लिंग का हो या उसकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थिति भिन्न–भिन्न हो। वे उन्हें समान रूप से प्राप्त होते हैं। ये मानव के वे अधिकार हैं जो मनुष्य मात्र को गौरवान्वित जीवन जीना सिखाते हैं।

मानवाधिकार सामाजिक जीवन की वह परिस्थितियाँ होती हैं, जिनके अभाव में कोई भी प्राणी अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं कर पाता है। तब वह चाहे पुरुष हो या फिर महिला। मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 की धारा 2 (घ) में मानवाधिकार की परिभाषा कुछ इस प्रकार दी है– इसके अनुसार मानवाधिकार से तात्पर्य व्यक्ति के जीवन, स्वतन्त्रता, समानता एवं गरिमा से सम्बन्धित अधिकारों से है। 20वीं सदी के उत्तरार्द्ध से ही जीवन तथा जगत के अनेक क्षेत्रों में नारी ने अपनी एक अलग पहचान बनायी है। यह सत्य केवल इतना ही नहीं है। यदि हम अपने अतीत में झाँक कर देखें तो क्या वे मानव अधिकार फलीभूत हो रहे हैं? या हुये हैं? यह प्रश्न विचारणीय है।

प्राचीन काल से ही नारी के प्रति समाज की भेदभावपूर्ण नीति रही है। उसे कभी भी पुरुष के समतुल्य नहीं माना गया है। ऋग्वेद तथा उत्तरवैदिक काल में भी घोषा, लोपा, मुद्रा, विश्ववारा, गार्गी, मैत्रेयी, अनुसूया, अरून्धती जैसी अनेक विदूषी महिलाएँ हुई हैं। जिनका चिन्तन एवं बौद्धिक स्तर उच्चकोटि का था तथा समय आने पर अपनी विद्ववता का भी परिचय देती थी।

प्राचीन काल से लेकर वर्तमान काल तक हिन्दी साहित्य की भूमिका में भी यदि हम देखें, तो हर काल में महिला सृजनात्मक क्षेत्र में महिला लेखन के प्रति भी समाज की दोहरी नीति रही है। सन् 1984 'सारिका' में एक वरिष्ठ आलोचक ने लिखा है कि– "स्त्रियों की रचनाएँ इसलिए छपती हैं कि वे स्त्रियाँ हैं।" महिला लेखन की चर्चा में कुछ बिन्दुओं को उठाना अतिआवश्यक है। साहित्य के माध्यम से एक नारी साहित्यकार नारी के व्यक्तित्व के आन्तरिक तथा बाह्य दोनों ही पक्षों का उद्घाटन करती है कि क्या नारी को समस्त अधिकार प्राप्त हैं अथवा क्या मानवाधिकार के द्वारा ही अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बना पाई है?

सन् 1946 में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा महिलाओं के लिए आर्थिक एवं सामाजिक परिषद् द्वारा महिलाओं की हैसियत पर आयोग की स्थापना की गयी। सन् 1952 में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा राष्ट्र महासभा ने महिलाओं के 'राजनैतिक अधिकारों पर प्रसंविदा' को अंगीकार किया। कुछ वर्ष पश्चात् 7 नवम्बर सन् 1967 में संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 'महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव' की समाप्ति की घोषणा की थी। इन तमाम आदेशों व घोषाओं के बाद भी महिलाओं की दशा में कोई भी सुधार नहीं हो पाया है। आज के युग में महिलाओं के विरुद्ध यौन अपराध पूरी दुनिया में चिंता का विषय बना हुआ है।

इन समस्त घटनाओं को एक मात्र नारी साहित्य ही है जो बिना किसी रोकटोक के तथा बेहिचक समाज के समक्ष उजागर कर सकता है। आज जो विमर्श सबसे अधिक चर्चा का विषय है वह है नारी विमर्श। बाजार एवं जगतीकरण ने स्त्री चिंतन के भूगोली और आर्थिक तथा सामाजिक तीनों को ही बदल दिया है।

यह कटु सत्य है कि पुरुष प्रधान समाज में महिलाओं का सदैव ही शोषण होता रहा है। अपने देश में वह शूद्र की श्रेणी में रखी गयी है। वह केवल भोग्या मानी गई है। पश्चिम में तो स्त्री को खतरनाक 'सेक्स' तक कहा गया है। इस खतरे से बचने या कम करने के लिए उसे घर के बाहर कहीं पर भी कोई अधिकार नहीं मिला है। ऐसा कौन सा कारक है जिसके कारण महिलायें मानवाधिकारों के होते हुये भी अपने मूल अधिकारों से वंचित हैं।

नारी लेखन की यदि हम बात करें तो आदिकालीन साहित्य की सिद्ध साहित्य काव्यधारा में भी पहली बार मनुष्य रूप से तीन महिलाओं को शामिल किया गया है। हिन्दी की यह पहली काव्यधारा है जिसमें कम से कम तीन महिलाओं– मणिभद्रा, मेखलपा और लक्ष्मीकरा ने अपनी अहम् भूमिका अदा की थी। वस्तुतः यहीं से हिन्दी साहित्य में नारी लेखन का प्रारम्भ होता है। इसके अतिरिक्त नारी की मुद्रा रूप की भी यहाँ कल्पना मिलती है।

इस प्रकार बची–कुची बेडियों को मध्यकालीन कवयित्री मीरा ने तोड़ डाला। उसने स्वच्छन्द होकर भावों तथा विचारों को वाणी दी। किसी भी बंधन को उन्होंने स्वीकार नहीं किया, जो मन हुआ, धड़ल्ले से किया।

वर्तमान परिदृश्य में यदि देखें तो आज नारी लेखन राष्ट्र के अनेक नगरों में प्रत्येक राज्य में महिला मंच की चर्चाओं में स्पष्ट दिखायी देता है।

जहाँ बात आती है मानवाधिकार की तो क्या ये सभी को समान रूप से प्राप्त हैं? इस बात पर दृष्टिपात किया जाय तो क्या नारी पर यह अधिकार समान रूप से चरितार्थ होते हैं? या नहीं। आदिकाल से तथा सृष्टि के आरम्भ से ही नारी को मुसीबत समझा जाता है। मनुस्मृति में तो नारी के अधिकारों को छीनते हुये यहाँ तक कहा गया है कि–

"पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने।

रक्षन्ति स्थविरे पुत्राः, न स्त्री स्वातन्त्र्य मर्हसि।।"

अर्थात – स्त्री कभी भी स्वतन्त्र रहने योग्य नहीं है, बचपन में वह पिता के अधिकार में रहनी चाहिये, यौवनावस्था में भाई के नियन्त्रण में तथा विवाह के पश्चात् पति के वश में एवं वृद्धावस्था में पुत्र के नियन्त्रण में रहनी चाहिय।

किन्तु स्त्री–मुक्ति आन्दोलन और स्त्रीवादी चेतना के फलस्वरूप नारी जीवन में नयी ऊर्जा दिखाई पड़ी। एक नया उन्मेष आया। इसका प्रभाव दुनिया भर की लेखिकाओं पर पड़ा। इस प्रभाव की मीमांसा के लिए हमें तीसरी दुनिया को उसके अपने सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में देखना होगा। राजा राममोहन राय, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, केशव चन्द्र सेन, गोविन्द रनाडे, श्रीमती ऐनी बेसेन्ट के जागरूकता अभियान भले ही नारी स्वतन्त्रता तथा नारी शिक्षा के हिमायती हो तथा उसे समाज में प्रतिष्ठित स्थान दिलाने के पक्ष में हों, इन सभी प्रयासों के बल पर नारी आत्मनिर्भर तथा आत्मविश्वासी तो बनी है। उसकी यही स्वतन्त्रता साहित्यिक फलक पर कविता, कहानी, उपन्यास, संस्मरण, रेखाचित्र, डायरी तथा अन्य विधाओं में देखी जा सकती है। नारी लेखन की इन स्थितियों में भाव एवं सौन्दर्य का रूप निहित है। वास्तव में नारी लेखिकाओं ने अपने विचार साहित्य को बहुत बड़ा विस्तार दिया है। किन्तु कभी–कभी उसके बोल्ड लेखन को सराहा जाता है और कभी उसका राजनीतिकरण कर दिया जाता है। नारी को अपने भीतर और बाहर के सन्तुलन को बनाकर रखना होगा, तभी वह विभिन्न दवाबों से मुक्त हो पायेगी और नारी लेखन अपनी ऊँचाईयों तक को छू पायेगा।

यदि देखा जाय तो नारी के बिना हम सृष्टि की कल्पना भी नहीं कर सकते, क्योंकि कहा भी गया है कि –

"नारी कृत्या मृत्यु उर्वशी, जननी जाया माया।
यह वह हिरण्य गर्भा है जिसमें सब ब्रह्माण्ड समाया।"

नारी ने प्रत्येक युग में अपनी योग्यता, कुशलता तथा बौद्धिक श्रेष्ठता का परिचया दिया है। अनेक परिस्थितियों के बावजूद भी उसने अपने भीतर के दैवीय गुणों को समयानुकूल बाह्य जीवन में प्रकट किया है।

नारी अपने लेखन में एक नारी के जीवन के अन्तरंग तथा बहिरंग दोनों पक्षों को गहराई से निर्मित करने में सक्षम होती है। उसकी पीड़ा, उसकी वेदना, उसकी सामाजिक तथा मानसिक स्थिति समाज में उसका स्थान सभी कुछ नारी लेखन में दिखाई पड़ता है। यदि हम नारी लेखिकाओं के जीवन चक्र को देखें तो वह अपने पारिवारिक दायित्वों का निर्वाहन अच्छी तरह से कर रही है, जिससे उनके लेखन पर किसी प्रकार का प्रभाव दिखलाई नहीं पड़ता है। किन्तु बाह्य जगत में मानवाधिकारों के होते हुये भी राजनीतिक नियन्त्रण तथा दाँव–पेंचों से उनका लेखन कार्य अवश्य बाधित हो रहा है। प्रसिद्ध 'लज्जा' उपन्यास की लेखिका 'तसलीमा नसरीन' को यदि हम देखते हैं कि पूरी दुनिया को हिला देने वाली लेखिका आज अपनी एक रचना के लिए देश–प्रदेश भटक कर निर्वासित जीवन जी रही है। यहाँ तक की उसके उपन्यास (लज्जा) को भी प्रतिबन्धित कर दिया गया है। इसका कारण कोई अपराध नहीं है, उन्होंने तो केवल अपने विचारों को समाज के समक्ष प्रस्तुत करना चाहा है, यही एक कारण है कि बिंदास लिखने वाली लेखिका को इस तरह से प्रताड़ित तथा अपमानित होना पड़ा है। किन्तु हमारे समाज में कुछ ऐसे लोग हैं जो कि उस लेखिक की सुरक्षा तथा सम्मान की भी माँग कर रहे हैं।

कविता के विस्तृत फलक पर भी सुभद्राकुमारी चौहान व भारत कोकिला सरोजनी नायडू को कभी भुलाया नहीं जा सकता है। ज्ञानपीठ पुरस्कार से अलंकृत छायावादी कवियित्री महोदवी वर्मा के गीतों का दर्द कही अन्य नहीं मिल सकता है। आँचलिक क्षेत्र से महिला रचनाकारों की बात की जाय अथवा केन्द्र से महिला रचना धर्म को देखा जाय। स्पष्ट यही होगा कि आज भी हमारी बुर्जुवा कला साहित्य प्रेमी पीढ़ी गाहे–बगाहे कला व साहित्य के उन संस्कारों में जी रही है, जो महिला सृजनकारों द्वारा सृजित है। कश्मीर में पद्मा सचदेव, बंगला में महाश्वेता देवी के बंगाल के समाज को देखा जाय, पंजाब से अमृता प्रीतम, बंगलादेशी लेखिका तस्लीमा नसरीन, उत्तराखण्ड में शिवानी, मृणाल पाण्डे, तारा पाण्डे, सरीखी महिलाओं की बात की जाय तो साहित्य के प्रति इन लेखिकाओं का जज्बा व जिम्मेदारी अपनी अलग साख रखती हैं।

जब स्त्री से सम्बन्धित मुद्दों पर बात चलती है तो हमारे आगे–पीछे पौराणिक कथाएँ, वेद, उपनिषद और स्मृतियों के साथ–साथ इतिहास भी चलने लगता है। बहुत से लोग इन प्राचीन और मध्यकालीन लेखों और दृश्य बन्धों को भारतीय परंपरा की अक्षुण्य धरोहर मानकर चलते हैं। तो कुछ लोग उनकी स्वीकृति से इन्कार की मुद्रा में आना चाहते हैं। जब तक पुरुष वर्चस्व का रक्षात्मक, सुरक्षात्मक, पारम्परिक दबदबा रहा तब तक स्त्री अपने मतभेद परिवार और समाज के सामने नहीं ले पायी है।

इस असमर्थता के पीछे स्त्री के लिए बने वे आदर्श रहे हैं जिन पर आचरण करते हुए उसे अपने आपको 'अच्छी स्त्री' प्रमाणित करने की अनिवार्यता थी और आज भी है। उसके कंठ से आती हुई वह आवाज गले में ही घुटकर रह गयी, जो धर्म ग्रंथों ओर ऐतिहासिक दस्तावेजों के खिलाफ़ मानी जाती रही हैं, क्योंकि ऐसी 'वाचाल' औरत के लिए इन लिखित लिपियों में कठोर से कठोर दण्ड विधान दर्ज है। सदियाँ बीत गयी, युग पर युग बदलते गये, किन्तु औरत का इतिहास बदलने का नाम ही नहीं लेता, कैसे बदले, आज भी हमारे समाज में विद्वान लोग उन धर्म ग्रन्थों को प्रतिमान बनाये हुए हैं जो सिर से पैर तक स्त्री विरोधी हैं।

तमाम सामाजिक बन्धनों और प्रतिकूल हालातों के बाद भी देश की महिलाएँ निरन्तर आगे बढ़ रही हैं। इससे हमारा देश, हमारा समाज, बदल रहा है। पढ़ाई–लिखाई, नौकरी, खेल और कारोबार में स्त्रियों ने चुनौतियों को न केवल स्वीकार किया है बल्कि नई इबारत भी गढ़ी है। आजादी के समय भारत में 10 फीसदी से कम महिलाओं ने उच्च शिक्षा के लिए नामांकन किया था, जव वर्ष 2010–11 तक 41.40 प्रतिशत पहुँच चुका है।

यह सच है कि शताब्दियों से सीमित और नियंत्रित की गई स्त्री ने अब अपने पंख खोल दिये हैं। समाज द्वारा निर्धारित विधि निर्धारित विधि निषेधता बताते हुए स्त्रियों ने सामान्य मनुष्य के रूप में जीने का ढंग सीख लिया है। देवी कहते हुये दासी से भी बदत्तर स्थिति में रखे जाने की चालाकी का छदम् उजागर हो चुका है। जो स्त्रियाँ चरणों की दासी, पालिता आदि थी, वे अब चुनौती की तरह सामने आ गई हैं। खास तौर पर मध्य वर्ग की स्त्रियों में यह परिवर्तन साफ जाहिर होता है। यह सब एक बड़े परिवर्तन का संकेत दे रहा है।

नारी लेखन में जो विद्रोह के स्वर दिखाई देते हैं, उसका कारण है स्त्रियों के प्रति हमारे समाज में बढ़ती असहिष्णुता और दुर्व्यवहार की बर्बर घटनाओं का सम्बन्ध इसी बौखलाहट से है। इसकी अभिव्यक्ति अनेक स्वरों पर हो रही है। कुछ लोग इसकी वैचारिकी गढ़ रहे हैं, तो कुछ लोग इसे ज़मीनी स्तर पर अंजाम दे रहे हैं।

आज देश में स्त्री सशक्तिकरण और स्त्री अस्मिता की नई परिभाषाओं के ये प्रतीक वास्तव में हमारे संविधान की मूल–भावना सबके लिए समानता, स्वतन्त्रता और बंधुत्व के भी प्रतीक हैं। हमारे संविधान ने सभी को समान अवसर व अधिकार दिये

हैं और ये महिलाएँ अपने संघर्ष और जिजीविषा के बल पर इस मुकाम तक पहुँच गई हैं। महाभारत भले ही राजनीति में स्त्रियों की भूमिका का प्रतीक नहीं रहा, हमारी संस्कृति में दुर्गा, काली स्त्रियों की भूमिका एक प्रतीक रही हैं। जो अत्याचारी और अन्यायिओं का संहार करती हैं। समाज, धर्म और राजनीति को शुद्ध करती है। देश ने इन्दिरा गाँधी में इसी रूप को देखा। इसलिए बदलते भारत की राजनीति में महिलाओं की बदली भूमिका रही है। ये नई प्रतीक यदि जनता की भावनाओं पर खरी उतरती हैं तो ये राष्ट्र के सशक्तिकरण और राष्ट्रीय अस्मिता का प्रतीक बन जायेगी। स्वतन्त्रता के पश्चात् नारी की स्थिति में क्रान्तिकारी बदलाव आए। चाहे वह शिक्षा के क्षेत्र में हो, चाहे रोजगार के क्षेत्र में हो या लेखन के क्षेत्र में, उसने हर क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ व मुकाम हासिल की है।

मानव अधिकारों को नैसर्गिक अधिकारों के रूप में देखा जाता है, जो प्रकृति से पुरुषों एवं महिलाओं के हैं। मानव अधिकारों का वर्णन "सामान्य अधिकारों" की तरह भी किया जाता है। क्योंकि वह विश्व के पुरुष एवं महिलाओं के उसी प्रकार से हैं। जैसे इंग्लैण्ड के 'कॉमन विधि' के अन्तर्गत जो स्थानीय प्रथाओं से भिन्न ऐसे नियमों एवं प्रथाओं का समूह है जो पूरे इंग्लैण्ड को नियन्त्रित करता है, या उस पर लागू होता है। ये सामान्य अधिकार बिना भेद–भाव के सभी मनुष्यों को सिर्फ मनुष्य होने की योग्यता के चलते मिले होते हैं। चूँकि मानवाधिकारों ने किसी विधायनी ने निर्मित नहीं किया, ये नैसर्गिक अधिकारों के समान हैं।

अंततः यही निष्कर्ष निकलता है कि नारी व नारी लेखन को अब एक मुकाम मिल चुका है और वह अपने मूलभूत अधिकारों को प्राप्त करने में सक्षम हो गयी है। साहित्य के विस्तृत फलक पर नारी लेखिकाओं ने महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ हासिल की हैं। नारी लेखन को उन्नत व प्रभावी बनाने में मानवाधिकारों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। आज नारी स्वतन्त्र है और वह अपने विचारों को वाणी दे पा रही है, जो सराहनीय है।

सन्दर्भ

1.डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास
2.डॉ. राम छबिला त्रिपाठी, भारतीय साहित्य
3.शैलश मटयानी, माता प्रिय कहानियाँ
4.तुलसी, रामचरित मानस
5.दिनेश नन्दनी डालमिया एवं संतोष गोयल, नारी एक सफर
6.समकालीन भारतीय साहित्य अंक 77, 1998
7.गगनदीप, एक दिन लौटेगी लड़की
8.डॉ. प्रमिला कपूर, भारत में विवाह व कामकाजी महिलायें